संध्या सुंदरी - सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला

दिवसावसान का समय- मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुंदरी, परी-सी,
धीरे, धीरे, धीरे,
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर-मधुर हैं दोनों उसके अधर,
किंतु जरा गंभीर, नहीं है उनमें हास-विलास।
हंसता है तो केवल तारा एक-
गुंथा हुआ उन घुंघराले काले-काले बालों से,
हृदय राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।
अलसता की-सी लता,
किंतु कोमलता की वह कली,
सखी-नीरवता के कंधे पर डाले बांह,
छांह सी अम्बर-पथ से चली।
नहीं बजती उसके हाथों में कोई वीणा,
नहीं होता कोई अनुराग-राग-अलाप,
नूपुरों में भी रुन-रुन रुन-झुन नहीं,
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा 'चुप चुप चुप
है गूंज रहा सब कहीं-
व्योम मंडल में, जगतीतल में-
सोती शांत सरोवर पर उस अमल कमलिनी दल में-
सौंदर्य-गर्विता-सरिता के अति विस्तृत वक्षस्थल में-
धीर-वीर गंभीर शिखर पर हिमगिरि-अटल-अचल में
उत्ताल तरंगाघात-प्रलय घनगर्जन-जलाधि-प्रबल में-
क्षिति में जल में नभ में अनिल-अनल में-
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा 'चुप चुप चुप
है गूंज रहा सब कहीं-
और क्या है? कुछ नहीं।
मदिरा की वह नदी बहाती आती,
थके हुए जीवों को वह सस्नेह,
प्याला एक पिलाती।
सुलाती उन्हें अंक पर अपने,
दिखालती फिर विस्मृति के वह अगणित मीठे सपने।
अर्ध्दरात्रि की निश्चलता में हो जाती जब लीन,
कवि का बढ जाता अनुराग,
विरहाकुल कमनीय कंठ से,
आप निकल पडता तब एक विहाग!